|| श्रीहरिः ||

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम् |
देवकीपरमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ||

॥ गीता पढ़ें, पढ़ायें, जीवन में लायें ॥

|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 18: मोक्षसंन्यासयोग

2/6 (श्लोक 11-22), शनिवार, 15 मार्च 2025

विवेचक: गीता विदूषी सौ वंदना जी वर्णेकर

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/5G2o8P-RcO4

कर्म के पाँच अविभाज्य घटक

सुमधुर देशभक्ति गीत, श्रीहनुमान चालीसा पाठ, प्रार्थना, दीप प्रज्वलन माँ भारती, माँ सरस्वती की प्रार्थना, गीता-माहात्म्य के मधुर गायन के साथ श्रीवेदव्यास, सन्त ज्ञानेश्वर महाराज तथा पूज्य गुरुदेव के मुखारविन्द से प्रवाहित ज्ञानधारा के कण एकत्र करते हुए उनके श्रीचरणों में नतमस्तक होते हुए इस कलश अध्याय के मध्यांश का विवेचन आरम्भ हुआ। यह अध्याय हमें सम्पूर्ण श्रीमद्भगवद्गीता का सार प्रदान करता है।

श्रीमद्भगवद्गीता का प्रारम्भ ही "धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे" शब्दों से होता है। जिस प्रकार अहिल्या देवी होल्कर जी ने कहा कि श्रीमद्भगवद्गीता का सार प्रथम श्लोक में ही समझ में आता है-

"क्षेत्रे-क्षेत्रे धर्म कुरु"

अर्थात् अपने कार्यक्षेत्र में अपना धर्म या कर्त्तव्य करना ही श्रीमद्भगवद्गीता का मुख्य सन्देश है।

कुरु का अर्थ कर्म होता है तथा क्षेत्र का अर्थ भूमि होता है। प्रत्येक व्यक्ति का कर्म क्षेत्र पृथक-पृथक होता है किन्तु किसी सङ्घर्षपूर्ण परिस्थिति में वह कर्मक्षेत्र ही युद्धभूमि में परिणित हो जाता है। हम सब भी, चाहे हम किसी भी व्यवसाय में हैं, या गृहिणी हैं, अपने-अपने कर्त्तव्यों को करते हुए, हमें उस क्षेत्र में कर्म करने के परिणाम प्राप्त होते हैं।

श्रीभगवान् इस अध्याय में कर्म तथा उसके फल का अत्यन्त सूक्ष्मता के साथ विवेचन करते हैं ताकि हमारे मन की भ्रान्तियाँ दूर हो जाएँ। जैसे-जैसे हमारा मन श्रीमद्भगवद्गीता में लगने लगता है तथा हम प्रेमभाव से श्रीमद्भगवद्गीता के साथ जुड़कर उनकी शरणागति में आने लगते हैं, वैसे-वैसे वे अपना अन्तरङ्ग खोलती हैं, हमें विभिन्न अर्थों के अनेक रत्न प्रदान करती हैं तथा हमें और अधिक गहराई में उतरने के लिए हमारा मार्ग प्रशस्त करती हैं। सात सौ श्लोकों की श्रीमद्भगवद्गीता अत्यन्त दिव्य है, जिसका वर्णन करते हुए ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं कि जिस प्रकार पृथ्वी का स्वरूप परिवर्तित होता रहता है, उसी प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता के अर्थ भी नित्य नूतन प्रतीत होते हैं। हम जितना इसकी गहराई में जाने का प्रयास करते हैं, उतने ही ये गूढ़ अर्थ हम समझने लगते हैं।

या गीतार्थाची थोरी । स्वयें शंभू विवरी ।

जेथ भवानी प्रश्नु करी । चमत्कारोनी ॥
तेथ हरू म्हणे नेणिजे ।

देवी जैसें का स्वरूप तुझें ।

तैसें नित्यनूतन देखिजे गीतातत्व।।

"हे देवी! हे जगदम्बा! हे पार्वती! हे प्रकृति! हे सृष्टि! जिस प्रकार ऋतु के अनुसार आपका स्वरूप परिवर्तित होता है, नित्य नूतन होता है, उसी प्रकार श्रीमद्भगवद्गीता तत्त्व भी नित्य नूतन है।" अतः हमें प्रतिदिन इसका प्राशन करना चाहिए तथा इसके अर्थों का चिन्तन करना चाहिए, इसके श्लोकों के शुद्ध उच्चारण सीखकर उन्हें कण्ठस्थ करना चाहिए तथा इसके साथ अपना नित्य सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए।

यही सम्बन्ध स्थापित करते-करते हम कलश अध्याय तक आ गये हैं तथा हमने देखा कि अर्जुन ने श्रीभगवान् से प्रश्न पूछा, "मुझे संन्यास तथा त्याग का सही-सही अर्थ बताईयेगा। मैं इसका तत्त्व जानना चाहता हूँ?"

संन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम्।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन।।

यहाँ से श्रीभगवान् अपनी बात कहना प्रारम्भ करते हैं कि "मनुष्य को अपने जीवन में यज्ञ, दान तथा तप- इन तीन कर्मों का त्याग कभी नहीं करना चाहिए।" ऐसे कर्म हमारे जीवन को पवित्र बनाते हैं तथा शुद्धता की ओर ले जाते हैं। उनका त्याग सम्भव नहीं है बल्कि कर्तृत्व तथा भोक्तृत्व अर्थात् 'मैंने यह किया' इस भावना का त्याग करना चाहिए तथा यह मानना चाहिए कि श्रीभगवान् ने यह कार्य करने की शक्ति मुझे प्रदान की। साथ ही कर्म के फल की ओर भी मेरी दृष्टि न रहे। यही सात्त्विक त्याग कहलाता है।

आगे श्रीभगवान् अर्जुन से कहते हैं कि "देहधारी मनुष्य के लिए किसी भी कर्म का त्याग करना सम्भव नहीं है क्योंकि श्वास लेना, बैठना, भोजन करना आदि अनेक कर्म देहधारी मनुष्य को करने पड़ते हैं।"

18.11

न हि देहभृता शक्यं(न्), त्यक्तुं(ङ्) कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी, स त्यागीत्यभिधीयते॥18.11॥

कारण कि देहधारी मनुष्य के द्वारा सम्पूर्ण कर्मों का त्याग करना सम्भव नहीं है। इसलिये जो कर्मफल का त्यागी है, वही त्यागी है - ऐसा कहा जाता है।

विवेचन- तृतीय अध्याय के श्लोक में हम देखते हैं-

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।

वही बात श्रीभगवान् यहाँ पुनः निर्णायक रूप से बताते हैं कि देहधारी मनुष्य के लिए किसी भी कर्म का सम्पूर्ण त्याग करना सम्भव नहीं है क्योंकि श्वास लेना, बैठना, भोजन करना आदि अनेक कर्म देहधारी मनुष्य को करने पड़ते हैं। वास्तव में ये कर्म ही हमारे चित्त को शुद्ध करके हमें अन्तःकरण की शान्ति प्रदान करते हैं क्योंकि हम मनुष्य देह धारण करके इस पृथ्वी रूपी कर्म भूमि में आये हैं। कर्म की यह यात्रा कैसे आनन्ददायी हो? यही ज्ञान हमें श्रीमद्भगवद्गीता से प्राप्त होता है।

श्रीभगवान् कहते हैं, "हे अर्जुन! जो कर्म के फलों का त्याग करता है, उसे ही त्यागी कहा जाता है।" कर्म के फलों का त्याग करने का अर्थ है कि कर्त्तव्य के रूप में हमने जो भी कर्म किये, जैसे हमने किसी रुग्ण व्यक्ति की सेवा की, आवश्यकता के समय किसी व्यक्ति की सहायता की तो उन कर्मों के फलस्वरूप कोई हमें धन्यवाद देगा तथा कोई नहीं भी देगा, तो हमें इस फल का त्याग करना है। हमें किसी की सहायता के उपरान्त उसके फल की इच्छा नहीं करनी है।

इसे एक उदाहरण से समझने का प्रयास करेंगे। यदि हमने किसी व्यक्ति की सहायता की तथा उसके फलस्वरूप उसने हमें धन्यवाद के रूप में कुछ उपहार या कुछ धनराशि प्रदान की तो क्या हम उसे जाकर मन्दिर में रख देंगे? नहीं! इसका अर्थ है कि हमें कर्त्तव्य के परिणाम के रूप में जो भी फल प्राप्त होता है, उसका अन्तरङ्ग पर जो भी परिणाम होता है, चाहे वह मनोनुकूल हो अथवा

प्रतिकूल, हमें उनका त्याग करना चाहिए। अनुकूल फल हमें सुख प्रदान करता है जबकि प्रतिकूल फल हमें दुःख प्रदान करता है। इसलिए कहा गया है कि-

अनुकूल वेदनीयं सुखं, प्रतिकूल वेदनीयं दुखं

गत सप्ताह हमने ज्ञानेश्वर महाराज की ओवी में देखा था -

वृक्ष कां वेली, लोटती फळें आलीं,
तैसीं सांडीं निपजलीं, कर्में सिद्धें ॥

जिस प्रकार प्रकृति में हम जो भी वृक्ष वेली देखते हैं, वे फलते-फूलते हैं किन्तु उचित समय आने पर वे अपने फल-फूल छोड़ देते हैं तथा नवीन सृजन के लिए तैयार हो जाते हैं। केवल मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है जो अपने कर्म के फलों को धारण करके बैठता है।

ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं-

परिस पां सव्यसाची, मूर्ती लाहोनि देहाचि।
खंती करिती कर्मांची, ते गावंढे गा ॥

वे कहते हैं कि "यदि देहधारी मूर्ति प्राप्त मनुष्य अपने कर्मों का त्याग करना चाहे तो वह गर्दभ है।" कर्म का त्याग करने की बात सोचना ही मूर्खता है। मनुष्य को कर्म का त्याग नहीं करना है, बल्कि उनके परिणामों से स्वयं को मुक्त करना है ताकि कर्म की यह यात्रा हमारे लिए आनन्ददायी हो जाए। फल की ओर दृष्टि रखते हुये किया जाने वाला प्रत्येक कर्म हमारे लिए आनन्ददायी नहीं रहता क्योंकि यदि उस कर्म का मनोनुकूल फल प्राप्त नहीं होता तो हमारे मस्तिष्क में इसी बात का चिन्तन रहता है कि हम उस कर्म का मनोनुकूल फल कैसे प्राप्त करें? इसी प्रकार यदि हमें कर्म का प्रतिकूल परिणाम प्राप्त होता है तो अनेक बार मनुष्य के लिए उससे बाहर निकलना सम्भव नहीं होता।

हम अनेक बार देखते हैं कि विद्यार्थी मनोनुकूल परीक्षा परिणाम प्राप्त न होने के कारण आत्महत्या भी कर लेते हैं। इसी प्रकार मनोनुकूल परिणाम प्राप्त होने पर मनुष्य अहङ्कारी हो जाता है। ये दोनों ही भावनाएँ मनुष्य के व्यक्तित्त्व-निर्माण में बाधा पहुँचाती हैं तथा उसका आनन्ददायी स्वरूप लुप्त हो जाता है।

18.12

अनिष्टमिष्टं(म्) मिश्रं(ञ्) च, त्रिविधं(ङ्) कर्मणः(फ्) फलम्।
भवत्यत्यागिनां(म्) प्रेत्य, न तु सन्न्यासिनां(ङ्) क्वचित्॥18.12॥

कर्मफल का त्याग न करनेवाले मनुष्यों को कर्मों का इष्ट, अनिष्ट और मिश्रित - (ऐसे) तीन प्रकार का फल मरने के बाद (भी) होता है; परन्तु कर्मफल का त्याग करने वालों को कहीं भी नहीं होता।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, "अर्जुन! कर्म के तीन प्रकार के फल हैं- इष्ट अर्थात् अच्छा, अनिष्ट अर्थात् बुरा तथा मिश्रित अर्थात् अच्छे तथा बुरे का मिश्रण। कर्म के फल का त्याग न करने वाले व्यक्ति को देह छोड़ने के बाद भी कर्म के फल भोगने पड़ते हैं किन्तु जिसने कर्मफल का त्याग कर दिया, अपने सभी कर्मों के फल को श्रीभगवान् को अर्पण कर दिया, वह अपनी इस कर्म-यात्रा में आगे बढ़ जाता है। सन्त-महात्मा आदि कर्मफल की इस प्रक्रिया में अटकते नहीं हैं, चाहे इष्ट फल प्राप्त हो, अनिष्ट फल प्राप्त हो अथवा मिश्रित फल प्राप्त हो।

हमें अपने जीवन में आने वाली अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थिति में अटकना नहीं है, इसलिए जीवन की इस यात्रा में श्रीमदभगवद्गीता हमारे साथ हो, हमारे जीवन रथ के सारथी भी श्रीभगवान् हों तो कर्म की यह यात्रा भी आनन्ददायी हो जाएगी तथा हमारा अन्तरङ्ग भी निर्मल हो जाएगा।

हम समझते हैं कि प्रत्येक कर्म श्रीभगवान् करते हैं, करवाते हैं तथा श्रीभगवान् ही हमें फल भी प्रदान करते हैं। श्रीभगवान् कहते हैं कि

ऐसा नहीं है। यह एक प्रक्रिया है। जिस प्रकार किसी क्रिया की प्रतिक्रिया होती है, उसी प्रकार प्रत्येक कर्म का फल प्राप्त होना अवश्यम्भावी है।

यहाँ हम प्रभु श्रीराम के जीवन का प्रसङ्ग देखेंगे। प्रभु श्रीराम का राज्याभिषेक होने वाला था। उन्हें बहुमूल्य वस्त्रों तथा आभूषणों से सजाया गया था। अत्यन्त सुन्दर, सुकुमार श्रीराम राज्याभिषेक के लिये तैयार होकर जाने ही वाले थे किन्तु उसी समय कैकेयी माता ने महाराज दशरथ से वे दो वर माँग लिये तथा उन्हें वनवास के लिये जाना पड़ा। जैसे ही वे सरयू नदी के निकट गये तथा निषाद राज गुह के घर में रात्रि विश्राम के लिए रुके, निषाद राज गुह ने अत्यन्त व्यथित होकर श्रीभगवान् से पूछा, "हे प्रभु! आपको यह दुःखद परिणाम क्यों भुगतना पड़ रहा है?" उस समय प्रभु श्रीराम ने उत्तर दिया-

"सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता"

सुख तथा दुःख का दाता कोई और नहीं है। ये मनुष्य के कर्मों के ही परिणाम हैं जो मनुष्य को फल के रूप में भुगतने पड़ते हैं। जब कोई अच्छा कर्म परिपक्व हो जाता है तो वह सुख प्रदान करता है तथा जब कोई बुरा कर्म परिपक्व हो जाता है तो वह दुःखद परिणाम प्रदान करता है।

श्रीभगवान् ने सृष्टि के दो अत्यन्त महत्त्वपूर्ण नियम बताये हैं- कृतप्रणाश्च तथा अकृताभ्यागम। कृतप्रणाश्च का अर्थ है- जो मैंने किया, उसका फल मुझ तक आएगा ही। अकृताभ्यागम का अर्थ है- जो मैंने नहीं किया, उसका फल मुझे नहीं भुगतना पड़ेगा, इसलिए मनुष्य को अपने सुख तथा दुःख को इस दृष्टि से ही देखना चाहिए कि हम सदैव अच्छे कर्म करें तथा अपना भविष्य स्वयं निर्माण करें।

18.13

पञ्चैतानि महाबाहो, कारणानि निबोध मे।
साङ्ख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि, सिद्धये सर्वकर्मणाम्॥18.13॥

हे महाबाहो ! कर्मों का अन्त करने वाले सांख्य-सिद्धान्त में सम्पूर्ण कर्मों की सिद्धि के लिये ये पाँच कारण बताये गये हैं, (इनको तू) मुझसे समझ।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, "हे महाबाहो! कपिल महमुनि के दर्शनशास्त्र के अनुसार कोई भी कर्म घटने के लिये पाँच कारण होते हैं, जिन्हें मैं तुम्हें बताता हूँ।"

जब कोई कर्म घटता है तो उसका अहङ्कार रूपी लेप धोने के लिये हम कहते हैं कि यह सब श्रीभगवान् ने करवाया है। अब हमें यह सोचना है कि यदि कोई बुरा कर्म कर रहा है तो क्या वह भी ईश्वर ही उससे करवा रहे हैं? राही मासूम रज़ा का एक प्रसिद्ध शेर है-

पत्ता भी जो गिरता है उसकी रज़ा से,
बंदा भी जो गुनहगार है मालूम नहीं क्यों।

यदि वृक्ष का एक पत्ता भी ईश्वर की इच्छा से ही हिलता है तो फिर संसार में अपराध क्यों होते हैं? क्या ईश्वर अपराध भी करवाते हैं? वास्तविकता यह है कि ईश्वर कर्म नहीं करवाते हैं। वे केवल शक्ति प्रदान करते हैं। हमें कर्म करते समय मस्तिष्क में रखना चाहिए कि ईश्वर न तो कर्म करवाते हैं और न ही कर्म के फल के लिये कुछ करते हैं। यह सब हमारे कर्मों के आधार पर स्वयमेव होता रहता है। शक्ति परमात्मा की है तथा इच्छा जीव की है। जीव की इच्छा के अनुसार ही कर्म होते हैं।

इसे एक उदाहरण से समझने का प्रयास करेंगे। एक पिता ने अपने दो पुत्रों को दो-दो हजार रुपये दे दिये। एक पुत्र तो उस धनराशि से कोई अच्छा ग्रन्थ खरीद कर लाया तथा उसे पढ़ने के लिये व्यग्र हो गया, या उसने वह धनराशि किसी अन्य अच्छे कार्य के लिये उपयोग की जबकि दूसरे पुत्र ने वह धनराशि बुरे व्यसनों में व्यय कर दी। इसमें क्या पिताजी का दोष होगा? नहीं! उन्होंने तो समान धनराशि प्रदान की थी किन्तु उसका उपयोग करने वाले पुत्रों ने अपनी रुचि के अनुसार उसे व्यय किया। इसीलिए कहा गया है-

ईश्वरस्तु पर्जन्यवत् द्रष्टव्यः।

ईश्वर को वर्षा के समान देखना चाहिए। खेत में जो बीज बोया जाएगा, उसी का फल उगेगा। किसी ने भाङ्ग बोयी तो भाङ्ग ही उगेगी तथा किसी ने गेहूँ, चना आदि कोई अन्न या आम आदि का बीज बोया तो वही उगेगा। इस प्रक्रिया में जिस प्रकार वर्षा अपना कार्य करती है, उसी प्रकार परमात्मा की कृपा से मनुष्य समस्त कार्य करते हैं। जीव द्वारा उसकी इच्छा तथा वासना के कारण कर्म घटित होते हैं।

श्रीभगवान् के ऊपर दो प्रकार के आरोप लगाये जाते हैं- पक्षपात तथा कठोरता। पूज्य गुरुदेव ने इसके सम्बन्ध में दो बहुत सुन्दर शब्दों का प्रयोग किया है- वैषम्य तथा नैघृण्य। नैघृण्य का अर्थ है कठोरता। क्या ईश्वर कठोर हैं कि एक के साथ अन्याय करेंगे तथा दूसरे के लिये पक्षपात करेंगे? नवम् अध्याय में श्रीभगवान् कहते हैं कि

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।।

श्रीभगवान् क़हते हैं, "अर्जुन! मेरे लिये सभी समान हैं किन्तु कुछ व्यक्ति मेरे पास आते हैं, मेरा भजन-पूजन करते हैं जिसके बदले में, मैं उन्हें वरदान प्रदान करता हूँ। कुछ व्यक्ति मेरे पास आते ही नहीं हैं तो वे उन वरदानों से वञ्चित रह जाते हैं।

आदिगुरु शङ्कराचार्य जी एक उदाहरण देते हैं कि शीत ऋतु में यदि किसी ने अग्नि प्रज्वलित की जिससे आस-पास के व्यक्तियों को उसकी ऊष्मा प्राप्त होने लगी तो दूर खड़ा व्यक्ति कहेगा कि मुझे तो इस अग्नि की ऊष्मा प्राप्त नहीं हो रही है, यह अग्नि पक्षपात कर रही है।

इसीलिए श्रीभगवान् यहाँ स्वयं पर लगे इन दोनों आरोपों का खण्डन करते हुये आगे कहते हैं-

18.14

अधिष्ठानं(न्) तथा कर्ता, करणं(ञ्) च पृथग्विधम्।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा, दैवं (ञ्) चैवात्र पञ्चमम्॥18.14॥

इसमें (कर्मों की सिद्धि में) अधिष्ठान तथा कर्ता और अनेक प्रकार के करण एवं विविध प्रकार की अलग-अलग चेष्टाएँ और वैसे ही पाँचवाँ कारण दैव (संस्कार) है।

विवेचन- ये समस्त श्लोक कर्म की बारीकियों को समझाने वाले अत्यन्त महत्त्वपूर्ण श्लोक हैं। हमारे जीवन के अविभाज्य घटक के रूप में किए जाने वाले कर्म के पाँच कारणों के विषय में श्रीभगवान् बताते हैं। ये हैं-

"अधिष्ठान अर्थात् कर्म करने के लिये आधार,

कर्त्ता, करण, चेष्टा तथा दैवी तत्त्व।"

यदि हम व्यापकता से देखें तो हमारा अधिष्ठान यह पृथ्वी है। किसी कृषक के लिये उसका अधिष्ठान उसका खेत है। किसी उद्योगपति के लिये उसका कारख़ाना ही उसका अधिष्ठान है। हम अपने अच्छे स्वास्थ्य के लिये योग-प्राणायाम करते हैं तो हमारे लिए हमारा शरीर ही अधिष्ठान है।

दूसरा कारण है कर्त्ता। यदि कृषि हेतु खेत तो है किन्तु कृषक नहीं है, कारख़ाना है किन्तु उसमें कार्य करने के लिये कार्मिक नहीं हैं, शल्यक्रिया-कक्ष है किन्तु शल्य चिकित्सक उपलब्ध नहीं है तो ऐसी स्थिति में भी कर्म नहीं हो पाएगा।

तृतीय कारण है करण अर्थात् साधन। कृषक हेतु हल तथा अन्य आवश्यक वस्तुएँ, कारखाने के कार्मिकों हेतु उपकरण तथा शल्य-क्रिया हेतु यन्त्र आदि की आवश्यकता होती है। इनके बिना कोई कर्म घटित नहीं हो सकता। यदि हम आत्म-ज्ञान प्राप्ति के लिये कोई कर्म अथवा प्राणायाम आदि कर रहे हैं तो हमारी इन्द्रियाँ ही हमारे करण हैं। इसीलिए हम शस्त्र-पूजन में अपने समस्त यन्त्रों का पूजन करते हैं।

यह सब होने के बाद भी यदि हमने कोई चेष्टा अथवा हलचल ही नहीं की तो भी कर्म सम्पन्न नहीं हो पाएगा। यह भी कर्म का अनिवार्य घटक है।

पाँचवाँ घटक है दैवीय तत्त्व अर्थात् भाग्य। कभी-कभी यह प्रभाव तो डालता है किन्तु यह मात्र बीस प्रतिशत ही प्रभाव डालता है।

श्रीमद्भगवद्गीता एक पुरुषार्थ-प्रधान ग्रन्थ है। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो दैव-तत्त्व को मानते ही नहीं हैं। वे कहते हैं कि मैं तो इसे नहीं मानता। मैं जो करूँगा, वह अवश्य घटित होगा। इसके विपरीत कुछ व्यक्ति केवल दैव-दैव ही करते रहते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में इन दोनों का मध्य-मार्ग प्रदान करते हुए कहा गया है कि दैव हमारे पूर्वजन्म के सञ्चित कर्म हैं जो प्रारब्ध बन कर आये हैं। इन पाँच कारणों में दैव-तत्त्व केवल बीस प्रतिशत ही प्रभाव डालता है।

पूज्य गुरुदेव ने हमें समझाने की दृष्टि से अत्यन्त सूक्ष्मता से इसका विश्लेषण किया है। पूज्य गुरुदेव कहते हैं कि "कोई कर्म घटित हो जाने के उपरान्त उसके दैव-तत्त्व का विचार करना चाहिए कि यह क्यों घटित हुआ? पहले से दैव-तत्त्व का विचार नहीं करना चाहिए। पहले हमें पूरी क्षमता से चार घटकों के आधार पर कर्म करना चाहिए, तदुपरान्त यदि उसमें कुछ त्रुटि रह जाए तब दैव-तत्त्व का विचार करना चाहिए।"

जिस प्रकार कृषक के रूप में कर्ता है, अधिष्ठान के रूप में उसका खेत है, करण के रूप में उसके पास आवश्यक यन्त्र आदि भी हैं, उसने चेष्टा भी की तथा बीज भी बोये किन्तु समय पर पर्याप्त वर्षा नहीं हुई तो सम्भव है कि उसके मनोनुकूल फसल प्राप्त नहीं हो पाए, परन्तु यह सोच कर वह कर्म ही न करे, यह अनुचित है।

मनुष्य का स्वभाव होता है कि जब उसके मनोनुकूल फल प्राप्त होता है तो वह कहता है कि यह मैंने किया परन्तु जब मनोनुकूल फल प्राप्त नहीं होता तो वह कह देता है कि 'मेरे भाग्य में ही नहीं है।' जब हम इन दोनों विचारों को त्याग कर कर्म करते रहेंगे तो दैव भी हमारे अनुकूल हुए बिना नहीं रहेंगे।

इस सन्दर्भ में एक कविता की बहुत सुन्दर पङ्क्तियाँ हैं-

नन्हीं चींटी जब दाना लेकर चलती है,
चढ़ती दीवारों पर, सौ बार फिसलती है,
मन का विश्वास रगों में साहस भरता है,
चढ़कर गिरना, गिरकर चढ़ना न अखरता है,
आख़िर उसकी मेहनत बेकार नहीं होती,
कोशिश करने वालों की हार नहीं होती |

निरन्तर प्रयास करने से कभी न कभी दैव-तत्त्व भी अनुकूल हो जाते हैं। यदि दैव-तत्त्व अनुकूल नहीं हैं तो कर्मकाण्डों तथा देवताओं की पूजा-अर्चना से, यज्ञ आदि से हम यथोचित प्रयास कर सकते हैं।

18.15

शरीरवाङ्मनोभिर्यत्, कर्म प्रारभते नरः।
न्याय्यं(म्) वा विपरीतं(म्) वा, पञ्चैते तस्य हेतवः॥18.15॥

मनुष्य, शरीर, वाणी और मन के द्वारा शास्त्रविहित अथवा शास्त्रविरुद्ध जो कुछ भी कर्म आरम्भ करता है, उसके ये (पूर्वोक्त) पाँचों हेतु होते हैं।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, "अर्जुन! जो मनुष्य इन पाँच कारणों के साथ-साथ मन, वाणी, शरीर से भी अच्छा या बुरा कर्म प्रारम्भ करता है, दोनों के ही लिये ये सभी कारण आवश्यक होते हैं।"

एक कर्म स्वयं का कल्याण करने वाला होता है और दूसरा कर्म स्वयं के साथ सभी का कल्याण करने वाला होता है। जैसे कोई

विस्फोटक सामाग्री बनाता है जिसके फलस्वरूप अनेक निर्दोष व्यक्तियों की जान-हानि होती है, उसे भी उपर्युक्त सभी कारणों की आवश्यकता होती है।

श्रीभगवान् कहते हैं, "इसलिए हमें यह समझना चाहिए कि इस शरीर में जो आत्म तत्त्व है, जिस शक्ति के द्वारा ये कर्म करते हैं, वह शक्ति या आत्मा कोई कर्म नहीं करती।

18.16

तत्रैवं(म्) सति कर्तारम्, आत्मानं(ङ्) केवलं(न्) तु यः।
पश्यत्यकृतबुद्धित्वान्, न स पश्यति दुर्मतिः॥18.16॥

परन्तु ऐसे पाँच हेतुओं के होने पर भी जो उस (कर्मों के) विषय में केवल (शुद्ध) आत्मा को कर्ता देखता है, वह दुष्ट बुद्धिवाला ठीक नहीं देखता; (क्योंकि) उसकी बुद्धि शुद्ध नहीं है अर्थात् उसने विवेक को महत्व नहीं दिया है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, "अर्जुन! इसलिए जो भी उचित या विपरीत कर्म घटित होते हैं, उनका कर्ता वह परब्रह्म तत्त्व नहीं है। मनुष्य दुर्बुद्धि के कारण यथार्थ नहीं देख पाता तथा इस प्रक्रिया का उचित विचार किए बिना उस आत्म तत्त्व को कर्ता समझता है।

इसका बहुत सुन्दर उदाहरण देते हुए ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं

दीपाचेनि प्रकाशें, गृहींचे व्यापार जैसे।
देहीं कर्मजात तैसे, योगयुक्ता॥

अर्थात् जिस प्रकार किसी घर में एक दीपक के प्रकाश में बहुत सारे कर्म घटित होते हैं, कोई रसोई बना रहा है, कोई अध्ययन कर रहा है, कोई टीवी देख रहा है आदि तो वह प्रकाश कोई कर्म नहीं करता है। सूर्य उदित होते ही पृथ्वी में हलचल प्रारम्भ हो जाती है तथा सभी अपने-अपने कर्म में लग जाते हैं तो वे समस्त कर्म सूर्य देव द्वारा नहीं किए जाते बल्कि उनके प्रकाश की ऊर्जा के कारण सम्पन्न होते हैं। वे सब कर्म प्रत्येक जीव की कर्म-यात्रा के अनुसार होते हैं। यह परम तथ्य जिसने जान लिया वह यथार्थ देखता है, इसलिए हमारे सन्त-महात्मा इस उच्च स्तर की भावना तक जाना चाहते हैं तथा उस स्थिति तक पहुँच कर वे अहङ्कृत भावना से मुक्त हो जाते हैं।

18.17

यस्य नाहङ्कृतो भावो, बुद्धिर्यस्य न लिप्यते।
हत्वाऽपि स इमाँल्लोकान्, न हन्ति न निबध्यते॥18.17॥

जिसका अहंकृत भाव (मैं कर्ता हूँ - ऐसा भाव) नहीं है (और) जिसकी बुद्धि लिप्त नहीं होती, वह (युद्ध में) इन सम्पूर्ण प्राणियों को मारकर भी न मारता है (और) न बँधता है।

विवेचन- श्रीभगवान कहते हैं, "अब जिसके अन्तःकरण से 'मैंने यह किया' वह भाव चला गया, सामान्य मनुष्यों के लिए यह जानना उतना आसान नहीं है क्योंकि हम देह बुद्धि में जीवन जीते हैं। देह के कारण ही हमारे कर्म घटित होते हैं। 'मैं ही देह हूँ और कर्म करने के लिए देह ही मेरा अधिष्ठान है। देह के कारण ही हमारी कर्मेन्द्रिय हैं, ज्ञानेन्द्रिय हैं, हमारे नेत्र देखते हैं, हमारे कान श्रवण करते हैं। हमारे हाथ और पैर कर्म करते हैं। इसी के कारण हम अहङ्कार के भाव में जीते हैं, जो प्रकृति का ही एक घटक है। हमने सातवें अध्याय में देखा है-

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतियं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।।

यह अष्टधा प्रकृति है, इसके जो आठ घटक हैं, इनमें अहङ्कार भी एक है। देह बुद्धि से ही प्रकृति में जो उपलब्ध रहेगा, वह तो सोचेगा कि यह मैंने किया। जिसने अपनी देह बुद्धि से अपनी बुद्धि का उन्नयन किया तथा जिसकी आत्मबुद्धि का जागरण हुआ, 'आत्म-तत्त्व के प्रभाव में, प्रकाश में कर्म हो रहे हैं किन्तु मैं आत्म तत्त्व मय हूँ, ये कर्म मैं नहीं कर रहा। ये तो मेरी देह कर रही है, मेरी आँखें देख रही हैं' वह ऐसे सोचेगा, उस भाव तक वह पहुँच जाएगा। अनेक व्यक्तियों की हत्या कर के भी वह उस पाप का भागी नहीं होगा, न ही वह उसमें बन्धेगा।'

अर्जुन परिणामों से भयभीत हो रहे हैं इसलिए श्रीभगवान कहते हैं कि "हे अर्जुन! तुम इस अहङ्कृत भावना से मुक्त हो जाओ। "ये कर्म, कर्त्तव्य के रूप में कोई मुझसे करवा रहा है" इस भावना के प्रबल होकर जब तुम कर्म करोगे, तब न तो तुम कोई हत्या करोगे और न ही उसमें बन्धोगे। इसलिए ज्ञानेश्वर महाराज कहते हैं-

किंबहुना तुमचें केलें, धर्मकीर्तन हें सिद्धी नेलें,
येथ माझें जी उरलें, पाईकपण ॥

"हे भगवान्! यह जो मैंने धर्म कीर्तन किया, यह ज्ञानेश्वरी जो मेरे मुखारविन्द से प्रस्फुटित हुई, यह सब मेरे कारण नहीं, यह तो आपकी कृपा से हुई है। मैं तो केवल आपका सेवक हूँ।"

यह सब कुछ कहना, इस अनुभूति तक पहुँचना, यह सब ऐसे ही नहीं होता। हमारे हाथों से जब कोई चूक हो जाती है तो हम उसके लिए कारण ढूँढना आरम्भ कर देते हैं। किसी से मेरा झगड़ा हुआ था, उसने पहले मुझे कुछ कहा तब मैंने उसे कुछ कह दिया था। गलत कर्मों के लिए हम कारण ढूँढते हैं तथा अच्छे कर्मों के लिए हम वैसा नहीं करते। कैसे होते हैं ये अच्छे कर्म? किसने मुझे शक्ति दी? किस के लालन-पालन से यह हो सका? कैसे गुरुओं ने मेरी बुद्धि में यह सामर्थ्य भरी? कैसे मुझे ग्रन्थ प्राप्त हुए? कैसे ऋषि-मुनियों ने इन ग्रन्थों में ज्ञान भर दिया? चाहे वह लौकिक हो या अलौकिक, या फिर चिकित्सा ज्ञान से सम्बन्धित, यह सब किसने किया? कोई ऊपर उठकर जब ऐसे सोचेगा, तब वह अहङ्कृत भावना से मुक्त होगा और अपने कर्मों के बन्धन से भी मुक्त हो जाएगा।

18.18

ज्ञानं(ञ्) ज्ञेयं(म्) परिज्ञाता, त्रिविधा कर्मचोदना।
करणं(ङ्) कर्म कर्तेति, त्रिविधः(ख्) कर्मसङ्ग्रहः॥18.18॥

ज्ञान, ज्ञेय (और) परिज्ञाता - इन तीनों से कर्मप्रेरणा होती है (तथा) करण, कर्म (और) कर्ता - इन तीनों से कर्मसंग्रह होता है।

विवेचन- श्रीभगवान् हमारे साथ ज्ञान, ज्ञेय और प्रतिज्ञाता- इनसे कर्म कैसे घटित होता है? उसका पूर्ण तटस्थता के साथ चिन्तन एवं विश्लेषण करते हैं। जब कोई कर्म करता है तो उसके तीन प्रेरणास्रोत होते हैं, ज्ञान, ज्ञेय और परिज्ञाता। ज्ञान तो ज्ञान है, जिसको जानना है वह है ज्ञेय और जानने वाला परिज्ञाता। इन तीनों को हम त्रिकुटि कह सकते हैं।

जैसे कार का एक नया मॉडल आया है। हम जानना चाहते हैं कि उस कार की माइलेज क्या होगी? उसके इञ्जन की क्षमता क्या होगी? कार के विषय में कुछ और बातें भी हम जानना चाहते हैं। कार के विषय में जो हमने जाना वह ज्ञान है। ज्ञान कार के विषय में था, अतः यहाँ कार ज्ञेय हो जाती है। उसे जानने वाला परिज्ञाता हो जाता है। श्रीभगवान् कहते हैं कि कर्म की प्रेरणा के लिए ये तीन बातें आवश्यक हैं।

जब हमने किसी विषय में ज्ञान प्राप्त कर लिया तो उसे प्राप्त करने की प्रेरणा हमारे अन्दर जागृत हो जाती है। जब हम रसगुल्ले के विषय में जानते है तो वह रसगुल्ले का ज्ञान हो गया, रसगुल्ला यहाँ ज्ञेय है। जिसने यह सब जाना वह है परिज्ञाता। रसगुल्ले के विषय में सब कुछ जाना, परन्तु उसे हमने अभी नहीं लिया है। उसे प्राप्त करने की इच्छा प्रेरणा है। इस प्रकार कर्म के लिए ये तीनों बातें आवश्यक होती हैं। मानसिक स्तर पर ये तीनों बातें आवश्यक हैं किन्तु शारीरिक स्तर पर कर्म की हलचल हुए बिना कर्म घटित होना सम्भव नहीं है। कर्म होने के लिए, कर्म का साधन, कर्म की क्रिया और कर्म करने वाला, ये तीनों आवश्यक हैं। इस प्रकार कर्म के लिए छह बातें निर्धारित हैं। ज्ञान, ज्ञेय, परिज्ञाता ये मानसिक स्तर पर तथा करण, साधन व कर्त्ता शारीरिक स्तर पर। जब कुम्हार मिट्टी से घट तथा अन्य बर्तन बनाता है, तो यहाँ मिट्टी करण है, चक्का साधन बन जाता है और कुम्हार कर्त्ता है

18.19

ज्ञानं(ङ्) कर्म च कर्ता च, त्रिधैव गुणभेदतः।
प्रोच्यते गुणसङ्ख्याने, यथावच्छृणु तान्यपि॥18.19॥

गुणों का विवेचन करने वाले शास्त्र में गुणों के भेद से ज्ञान और कर्म तथा कर्ता तीन-तीन प्रकार से ही कहे जाते हैं, उनको भी (तुम) यथार्थ रूप से सुनो।

विवेचन- यहाँ श्रीभगवान् कहते हैं, "गुणों के शास्त्र में उनके भेद, ज्ञान, कर्म तथा कर्त्ता तीन प्रकार से ही कहे जाते हैं, इन सभी बातों को तुम यथार्थ रूप से सुनो और समझो। तब तुम अपने ही ज्ञानचक्षु से जान सकोगे कि यह सात्त्विक है, राजसिक है या तामसिक है। तुम समझ सकोगे कि ज्ञान भी सात्त्विक, राजसिक तथा तामसिक होता है। यह भी जान सकोगे कि कर्ता सात्त्विक है राजसिक है या तामसिक है। इन तीन गुणों से सृष्टि कैसे विविधता में परिणत होती है? तुम यह भी जान सकोगे कि विविधता में एकता कैसे बनी रहती है?" हमने विविध रङ्गों की होली खेली, हमें इसे अपने शरीर से उतारना भी है और परमात्मा के एक रङ्ग में हमें खो जाना भी है।

18.20

सर्वभूतेषु येनैकं(म्), भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं(म्) विभक्तेषु, तज्ज्ञानं(म्) विद्धि सात्त्विकम्॥18.20॥

जिस ज्ञान के द्वारा (साधक) सम्पूर्ण विभक्त प्राणियों में विभागरहित एक अविनाशी भाव (सत्ता) को देखता है, उस ज्ञान को (तुम) सात्त्विक समझो।

विवेचन- यद्यपि सभी व्यक्तियों की शारीरिक रचना समान है किन्तु हमारे इन तीन गुणों के मिश्रण के कारण प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे से पृथक प्रतीत होता है। श्रीभगवान् कहते हैं, "अर्जुन! ज्ञान भी तीन प्रकार का होता है। जो ज्ञान हमें विविधता में एकता दिखाता है, हमारे सन्त-महात्मा आत्म तत्त्व की बुद्धि से इस धरातल को देखते हैं। वह ज्ञान सात्त्विक ज्ञान है, जो हमें अनेकता से एकता की ओर ले जाएगा।" विभक्त देखने वाले इन सभी प्राणियों में जो एक अविनाशी भाव है, आत्म-तत्त्व है, चैतन्य है, वह अविभक्त है। वह तत्त्व सभी में समान है, कण-कण में व्याप्त है। यह सात्त्विक भाव है जो हमें इस ज्ञान तक ले जाएगा। श्रीमद्भगवद्गीता हमें उस ज्ञान तक ले जाना चाहती है, इसलिए यह एक सात्त्विक ज्ञान है।

ठाकुर रामकृष्ण देव का प्रसङ्ग हमने सुना है। उन्हें गले का कैंसर होने के कारण वे मिष्ठान्न नहीं खा सकते थे। विवेकानन्द जी उनके प्रिय शिष्य थे। उन्हें यह देखकर अत्यधिक दु:ख होता था कि ठाकुरजी मिष्ठान्न नहीं खा सकते। तो विवेकानन्द जी ठाकुर से कहते हैं कि वे अपनी एकाग्रता से इस कैंसर से मुक्त हो जाएँ या फिर वे माँ जगदम्बा से प्रार्थना करें कि वे उनके कैंसर का निदान करें। तब ठाकुर जी कहते हैं कि वे अपने कैंसर के निदान के लिए माँ जगदम्बा से प्रार्थना क्यों करेंगे? वे तो उनसे अपने आत्म-तत्त्व के लिए प्रार्थना कर रहे हैं। वे कहते हैं, "मेरी सारी एकाग्रता देवी माँ पर लगानी है तो इस एकाग्रता को गले पर क्यों लगाऊँ? यह तो एक दिन जाने वाला है। नरेन्द्र! तुम क्यो व्यथित हो रहे हो? मेरी एकाग्रता तो माँ देवी में, उनका चैतन्य प्राप्त करने में लगी हुई है। मुझे अपने मुख से मिठाई क्यों खानी है? मेरे आस-पास सारे मुख जो मिठाई खा रहे हैं, वे सारे मुख मेरे ही तो हैं।" यह आत्म-तत्त्व की भावना है। श्रीभगवान् कहते हैं, "यहाँ तक जो ज्ञान पहुँच जाता है, वह सात्त्विक ज्ञान है।

18.21

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं(न्), नानाभावान्पृथग्विधान्।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु, तज्ज्ञानं(म्) विद्धि राजसम्॥18.21॥

परन्तु जो ज्ञान अर्थात् जिस ज्ञान के द्वारा मनुष्य सम्पूर्ण प्राणियों में अलग-अलग अनेक भावों को अलग-अलग रूप से जानता है, उस ज्ञान को (तुम) राजस समझो।

विवेचन- इस प्रकार का ज्ञान सृष्टि में नहीं है। सृष्टि में हमारी उपजीविका के लिए जो ज्ञान है, वह जीवन-दर्शन ज्ञान है, आत्म-ज्ञान है। हमें जीवन में उड़ान देने वाला ज्ञान सात्त्विक ज्ञान है। यह हमें अनेकता में एकता दिखाने वाला ज्ञान भी है। श्रीभगवान् कहते हैं वह ज्ञान जो हमें, विश्लेषण का ज्ञान देते हुए, हमें विभक्त करता है, वह राजसिक ज्ञान है। सभी भूतात्माओं में एक ही चैतन्य तत्व है।

अहं निर्विकल्पं निराकारमेकं
विभुत्वाच्च सर्वत्र सर्वेंद्रियाणां ।
यचासङ्गतम् नैव बन्धं न मोक्षम्
चिदानंदरुप शिवोहं शिवोहं ॥

आदिगुरु शङ्कराचार्य भगवान् कहते हैं, "मैं चैतन्य तत्त्व हूँ।" सात्त्विक ज्ञान हमें विज्ञान तक पहुँचाता है, परन्तु पृथक्करण करते हुए सभी भूत-तत्त्वों को अलग कर देता है, भिन्न कर देता है। जैसे हम जीवशास्त्र (zoology), वनस्पतिशास्त्र (botany) का ज्ञान प्राप्त करते हैं तो इनकी प्रजातियाँ भी पृथक ही होती हैं। इनको विभक्त करते हुए हम उसका अध्ययन करते हैं। इस तरह के विभक्त करने वाले अध्ययन या ज्ञान को राजसिक ज्ञान कहते हैं।

18.22

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्, कार्ये सक्तमहैतुकम्।
अतत्त्वार्थवदल्पं(ञ्) च, तत्तामसमुदाहृतम्॥18.22॥

किंतु जो (ज्ञान) अर्थात् जिस ज्ञान के द्वारा मनुष्य एक कार्यरूप शरीर में ही सम्पूर्ण की तरह आसक्त रहता है तथा (जो) युक्तिरहित, वास्तविक ज्ञान से रहित (और) तुच्छ है, वह तामस कहा गया है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं, "वह ज्ञान, जिसमें वह शरीर में ही पूर्णतः लिपटा हुआ है, अर्थात् 'मैं शरीर हूँ, इस भावना को तीव्रता से हमें अनुभव करने वाला ज्ञान। श्रीभगवान् इसे ज्ञान भी नहीं कहते, वे इसे तामस समझने के लिए कहते हैं, जो हमें शरीर से बाँधकर रखता है। मनुष्य केवल शरीर के विषय में ही सोचता रहता है, स्वयं को उसी से बाँधता रहता है। यह ज्ञान सभी श्रेणियों में, निम्न श्रेणी का तामस ज्ञान है।

जो व्यक्ति शरीर को ही मुख्य मानकर जीते हैं, उन्हें रङ्गभेद, वंशभेद, जातिभेद और साम्प्रदायिक भेद में ले जाने वाला तामसिक ज्ञान है। हमारे सन्त जन भी हमें इससे ऊपर उठकर, राजसिक तथा उससे भी ऊपर उठकर सात्त्विक ज्ञान में जाने के लिए हमें ज्ञान तथा उपदेश देते हैं। पावन भक्ति में भी यही तो है। सन्त, महात्मा यही माँगते हैं-

पावन भिक्षा दे दो राम,
अभेद भक्ति दे दो राम।
दीनदयालु दे दो राम,
अभेद भक्ति दे दो राम।
आत्म निवेदन दे दो राम,
पावन भिक्षा दे दो राम।।

अर्थात् "हे राम! मुझे अभेद भक्ति दे दो, जिससे जीवन में भेद मिट जाए, सभी के भीतर जो चैतन्य तत्त्व है, मैं वहाँ तक पहुँच पाऊँ तथा उस स्तर पर मैं जीवन जी पाऊँ।" यह सन्त-महात्माओं का जीवन है। आगे चलकर श्रीभगवान् हमें तीन प्रकार के कर्त्ता तथा कर्म के विषय में बताएँगे तथा स्वयं को पहचानने की राह भी हमें दिखाएँगे। इसके साथ ही, आज के विवेचन को गुरुजी के चरणों में समर्पित करते हुए सत्र का समापन किया गया तथा प्रश्नोत्तर सत्र आरम्भ हुआ।

प्रश्नोत्तर सत्र

प्रश्नकर्ता- रश्मि दीदी
प्रश्न- सन्ध्या काल की आरती के बाद कौनसी गीता जी पढ़नी चाहिए?

उत्तर- सन्ध्या काल की आरती के बाद आप केवल श्लोकों को पढ़ने के लिए गीता परिवार की सरल पठनीय गीता पढ़ सकते हैं और यदि आपको अर्थ भी जानना है तो आप गीता प्रेस गोरखपुर की चौदह नम्बर वाली पुस्तक या साधक सञ्जीवनी ले सकते हैं।

प्रश्नकर्ता- विनायक भैया
प्रश्न- "तत्तामसमुदाहृतम्" का क्या अर्थ है?
उत्तर- अधोगति की ओर ले जाने वाला है इसलिए इसे तामस ज्ञान कहा गया है।

प्रश्नकर्ता- रामसुन्दर भैया
प्रश्न- क्या अभी जो जीवन में घटित हो रहा है वह पिछले कर्मों के अनुसार हो रहा है और जो आगे के जन्म में घटित होगा वह इस जन्म के कर्मों के अनुसार होगा?
उत्तर- जी हाँ, ऐसा कहा जा सकता है। वह कर्म हमारा प्रारब्ध बन कर हमारे साथ जुड़ जाता है।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!
हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !
संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!
Let’s come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||
||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||